International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 12 Issue 8|| August 2023 || PP. 160-164

सूर की सामाजिक चेतना

डॉ0 रामेन्द्र रमण शर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर–हिंदी, मान्यवर कांशीराम राजकीय महाविद्यालय
गभाना (अलीगढ़)

हिन्दी साहित्य के मनीषियों में महाकवि सूरदास का स्थान अग्रगण्य है। ये भक्तिकाल के महान स्तम्भों मे से हैं। इनकी रचनाएँ हिन्दी ही नहीं, अपितु विष्व साहित्य की अमूल्य निधि हैं। सूरदास केवल एकान्तिक भक्त न थे वरन् एक सफल युग द्रष्टा भी थे। युगीन स्थितियों एवं संदर्भों की उन्हें व्यापक जानकारी थी। अपनी रचनाओं–सूरसागर, साहित्य लहरी, सूरसारावली में उन्होंने अपने युग तथा समाज का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत किया है।

महाकवि सूर ने अपने युग, समाज एवं सत्ता की उलट फेर को अध्ययन द्वारा नहीं बल्कि प्रज्ञा पक्षुओं से देखा था। वे जीवन के व्यापक अनुभवी, गहन संवेदनषील तथा विषाल दृष्टि सम्पन्न थे। जीवन की यथार्थ कटुताओं का प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष चित्रण उनकी रचनाओ ं मे मिलता है। इन रचनाओं के माध्यम से ही उन्होंनें लड़खड़ाते युग को नव जीवन प्रदान किया। समाज के विविध विकृतियों के कारण कुंठित हो जाने, उसकी चेतना के निष्क्रिय हो जाने तथा उसकी आत्मा के कलुषित हो जाने की स्थिति में साहित्य ही समाज को नयी चेतना और नया जीवन देता है। इसीलिए साहित्य को समाज की जीवन दापिनी शक्ति कहा जाता है। प्रत्येक युग और समाज की परिस्थितियों और जीवन–मूल्यों के अलग–अलग होने के कारण उन्हीं के अनुसार प्रेरणाएँ और प्रयोजनों में भी बदलाव हुआ करता है, और इसी के साथ ही साहित्य की प्रवृत्तियां भी बदलती रहती है।

साहित्यकोष के अनुसार–''चेतन मानव की प्रमुख विषेषता चेतना है, अर्थात् वस्तुओं, विषयों, व्यवहारों का ज्ञान। चतेना की परिभाषा कठिन है पर इसका वर्णन हो सकता है। चेतना की प्रमुख विषेषताएँ हैं–निरन्तर परिवर्तनषीलता अथवा प्रवाह, इस प्रवाह के साथ–साथ विभिन्न अवस्थाओं में एक अविच्छिन्न एकता और साहचर्य। चेतना का प्रभाव हमारे अनुभव–वैचित्र्य से प्रमाणित होता है और चेतना की अविच्छिन्न एकता हमारे व्यक्तिगत तादात्म्य के अनुभव से।[1]

हिन्दी साहित्य का मध्यकाल सामाजिक संकट का काल था। यह वह काल था जिसमें इस्लाम, विजेताओं के धर्म के रूप में भारत पहुँचा और इस देष में हिन्दुत्व के साथ उनका सम्पर्क हुआ। ऐसे संकट काल में जब लोगों की सामाजिक चेतना, पूर्णतया विलुप्त हो रही थी, सूर जैसे महापुरूष ने जन्म लेकर स्वधर्म के ऊपर आई संकट की आँधी में स्तम्भ बनकर समाज के धैर्य को नष्ट होने से बचाया और प्रतिः परिस्थितियों के बीच में ही भारतीयता की बुझती ज्योति को संभाला। मुगल–वैभव तथा उसकी चमचमाती चकाचौंध में आत्म विस्मृत हो, षासकों के आचार–व्यवहार को अपनाने के लिए बाध्य हो जाने वाली तथा अपनी संस्कृति से हाथ धो बैठने वाली सामान्य जनता के लिए ही उन्होंने 'सूरसागर' की रचनाकी और इसके माध्यम से आर्यजाति में प्रचलित आचार–व्यवहार, रीति–रिवाजों, पर्वों, उत्सवों, त्यौहारों, विभिन्न संस्कारों, कला–कौषल तथा पूजा आदि के विधि–विधानों का वर्णन कर सामान्य जनता को अपनी संस्कृति और उसकी महत्ता से परिचित कराया और इस प्रकार मुस्लिम संस्कृति द्वारा उसे आत्मवंचित होने से बचाया। भक्तिकाल के प्रायः सभी कवि लोलुपता विहीन तथा सांसारिक जीवन के प्रति पूर्णतः उदासीन रहे। उनका सम्पूर्ण जीवन अपने आराध्य की उपासना में ही बीत गया। प्रारम्भ में सूरदास विनय के पद गाया करते थे। जब बल्लभाचार्य से भेंट हुई तो आचार्य जी ने इनसे कुछ गाने को कहा। सूरदास जी ने विनय के दो पद सुनाये–''हौं हरि सब पतितन कौ नायक'' तथा '' प्रभु हौ सब पतितन कौं टीकौ''। जिसे सुनकर महाप्रभु ने कहा–सूर होकर ऐसे घिघियाते क्यों हो कुछ भगवत्लीला का वर्णन करो। बल्लभाचार्य के मिलन से सूर के व्यक्तित्व में एक नया मोड़ आया। उनके व्यक्तित्व को एक निष्चित षावदिा मिली तथा उन्हें अपनी हीनताग्रस्त चेतना को गौरवमय बनाने में सहायता मिली और उनकी पलायनवादी वृत्ति में स्थिरता आ गयी। सूर का समय पन्द्रहवींष्ताब्दी का अन्त और सोलहवीं षताब्दी का मध्य भाग है। उस समय देष पर लोदी वंष का षासन था। इससे पूर्व खिलजी बादषाहों के समय में हिन्दुओं के साथ कैसा व्यवहार होता था, इसका वर्णन डॉ0 ईष्वरी प्रसाद के षब्दों में द्रष्टव्य है–'हिन्दुओ ं के साथ विषेष रूप से कड़ाई की जाती थी। दो आब में तो उनकी उपज का आधा भाग ले लिया जाता था और इतनी कड़ाई से कूत किया जाता था कि विस्वा भर जमीन भी नहीं छोड़ी जाती थी। पशुओं के चारागाह पर अलग ही कर लिया जाता था और घर तक भी लगान से वंचित नहीं था। हिन्दू रैयतों एवं जमीनदारों के लिए घोड़े पर चढना, षस्त्र बाँधना, महीन कपड़े पहनना तथा पान खाना तक मना था। राजा की नीति यह थी कि हिन्दुओं के पास इतना धन ही न रहने दिया जाए कि वे घोड़े पर चढ़ सके हथियार रख सके, सुन्दर एवं महीन वस्त्र पहन सकें तथा किसी प्रकार से आराम का जीवन बिता सकें। उनकी ऐसी दुर्दषा कर दी गई थी कि किसानों और जमींदारों की बहू–बेटियाँ मुसलमानों के घर में मजदूरी का काम करती थीं।

यद्यपि सूरदास कवि सामाजिक होते हुए भी सामाजिकता से दूर रहे। अपने समय के सामाजिक अन्तर्विरोधों व द्वन्द्वों के स्थान पर समानता पर आधारित एक ऐसे मानव समाज की सृष्टि करना था जो विष्व बन्धुत्व तथा प्रेम के निष्चल तत्व पर आधारित हो। इसके लिए सूर ने कृष्ण राज्य की कल्पना की। उनका यह कृष्ण राज्य ब्रज का सरल, सौहार्द्र एवं रस से आप्लापित समाज है, जिसमें जातिगत तथा वगर्ग त भेदभाव के लिए कोई स्थान नहीं है। इसमें स्वामी–सेवक, राजा–प्रजा, ठाकुर–ठकुराइन और सामान्य स्त्रियों तक का सम्बन्ध ममता, एकता और निजत्व के मूल मंत्र पर आधारित है। सूर ने कृष्ण के रूप में ऐसे नायक की कल्पना की है जो भगवान और मनुष्य दोनों रूपों में जाति–पांति, छूआछूत तथा वर्गभेद का पूर्णतः उल्लंघन करने वाला है।

सूर के समय में वर्णाभ्रम व्यवस्था को लोग मिथ्या दृष्टि से देखने लग गये थे। इसीलिए सूर ने जातिय ऊँच–नीच की भावना को सर्वथा तुच्छ और त्याज्य कहकर लोगों को उससे परांगमुख होने का उपदेष दिया।

राम भक्तवत्सल निज बानौं।
जाति, गोत,कुल,नाम, गनत नहिं रंग होड़ के रानौं।।[2]

सूर के कृष्ण स्वयं कृब्जा नामक परिगणित जाति की नारी के घर जाकर और उसकी सेवा स्वीकार कर वर्णाश्रम धर्म के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ देते हैं और यह सिद्ध कर देते हैं कि सेवा की भावना से बढने वाला व्यक्ति सदैव ही स्नेह का पात्र है। सूर ने उनका यह आदर्ष रूप प्रस्तुत कर समाज को एक नयी चेतना की ओर उन्मुख किया।

मध्यकाल में समाज विघटनोन्मुख था। सूर दृष्टि में कृष्ण चरित्र ही एक ऐसा था जो यह महान् कार्य कर सकता था। कृष्ण का बाल–रूप इसका प्रमाण है। सूर ने श्री कृष्ण की बाल और यौवन लीलाओं के द्वारा जीवन के सौंदर्य पक्ष का उद्घाटन किया और जीवन के प्रति आस्था उत्पन्न कर दी कृष्ण को गोद में भर लेने की होड़–सी मची रहती है।

'नैक्ु गोपालहि मोकौ देरी।
देखौ बदन कमल नी कै कर, ता पाछे तू कनिया लै री।।'[3]

कृष्ण के इस रूप वर्णन का एक मात्र उद्देष्य परिवार तथा समाज में सरस, सौहार्द्रपूर्ण स्थिति का निर्माण करना है। 'खेलन में को काको गुसैया' वाला पद यह सिद्ध करता है कि बाल–समाज में ऊँच–नीच का कोई भेदभाव नहीं है। सूर के कृष्ण एकता के इसी निष्छल वातावरण में पले हैं जो ग्वालों के हाथ से जूठे कौर भी छीनकर खा जाते हैं।

'ग्वालिन करतें कौर छुड़ावत।
जूठौ लेत सबनि के मुख कौ, अपने मुख लै नावत।।'[4]

सूर ने कृष्ण के माखन–चोरी प्रसंग का भी वर्णन किया है। कृष्ण का माखन चोरी प्रसंग, मात्र प्रसंग ही नहीं है बल्कि परिवार को बृहतर समाज में बदलने की प्रक्रिया भी है। कृष्ण ग्वाल–बालों के साथ गोपियों के सूने घर में माखन चुराने जाते हैं लेकिन यह मात्र कृष्ण की इच्छा नहीं है, गोपियाँ भी चाहती हैं कि कृष्ण हमारे घर आवे और मैं उनको माखन खाते हुए अचानक पकडूँ।

'ब्रज वनिता यह सुनि मन हरषत, सदन हमारे आवैं
माखन खात अचानक पावै, भुज हरि अरहि छुवावै।

मन ही मन अभिलाष करति, सब ह्रदय धरति यह ध्यान।'

सूर ने कृष्ण को उस राजा के रूप में चित्रित किया है जो वर्गगत भेदभाव को कम करना चाहता है तथा गरीबों का रक्षक हैः

'हरिसो ठाकुर और न जनको।
जिहि–जिहि विधि सेवक सुख पावै,
तिहि–विधि राखत मन कौ।'

वे अपने सेवकों के खान–पान तथा वस्त्रादि तक का ध्यान रखने वाले हैं। शरणागत की रक्षा करने वाले, अनाथों के संगों और मति तथा गरीबों के गाहक भी है। वस्तुतः सूर के कृष्ण मध्य युगीन सामाजिक चेतना के अनुरूप है। सूर ने समाज में एकता और समानता स्थापित करने का प्रयास किया है। स ूर समाज वर्ग भेद, जाति भेद और यहाँ तक कि आर्थिक असमानता को भी मिटा देना चाहते हैं। उन्होंनें कृष्ण–प्रेम के वातावरण से पतितता और अधर्मता को दूर करने का प्रयास किया है। समाज के जिन वर्गों में षताब्दियों से आत्महीनता की भावना व्याप्त थी, उसे सूर ने भगवद् प्रेम से धो डालने का उपदेष दिया।

मध्यकालीन सामन्ती परिवेष में नारी पुरूष की सम्पत्ति थी। उसकी दषा अत्यन्त दयनीय थी। पुरूष मात्र उसका षोषक होता था। वह उसके प्रेम और समर्पण के महत्व को नहीं जानता था। सूर ने अपने भ्रमरगीत में इस पीड़ित नारी के प्रति अपार करूणा और सहानुभूति का प्रदर्षन किया है। उन्होंनें गोपियों के उपालभ्यों के माध्यम से पुरूष की उपेक्षा और नारी की व्यथा को वाणी दी हैः

'ऊधौ हमरौ दोष नहीं कछु वे प्रभु निपट कठोर।
हम हरि नाम जपत हैं निस दिन जैसे चंद चकोर।
हम दासी बिन मोल की ऊधौ ज्यौ गुड़िया बिन डोर।
सूरदास प्रभु दरसन दीजै नाहीं मनसा और।' 5

सूर ने नारी की उस दषा का चित्रण किया है जो पुरूष द्वारा परित्यक्त होने पर भी उसे मनाने के लिए विवष है। नारी की यह ममता निष्चित ही लाघनीय है।

सूर ने अपने काव्य में सामाजिक– संस्कारों का भी वर्णन किया है। डॉ0 राजबली पाण्डेय के अनुसार –''संस्कार से तात्पर्य षुद्धि की धार्मिक क्रियाओं तथा व्यक्ति के दैहिक, मानसिक और बौद्धिक परिष्कार के लिए किए जाने वाले अनुष्ठानों से है, जिनसे वह समाज को पूर्ण विकसित सदस्य हो सके।

संस्कारों की संख्या में पर्याप्त मत भेद हैं लेकिन लोकप्रिय और सर्वप्रचलित संस्कार सोलह हैं–गर्भाधान, फुंसवन, सीमातोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राषन, चूड़ाकर्म, कर्णबेध, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन, विवाह, वानप्रस्थ, संन्यास तथा अत्योष्टि। प्रथम तीन संस्कारों का वर्णन सूर ने नहीं किया है षायद वसुदेव और देवकी का जेल में रहना ही इसका कारण रहा

होगा फिर भी एक पद में उन्होंनें देवकी की गर्भावस्था का उल्लेख किया है। देव–पितरों को प्रसन्न करके तथा जप–तप से कृष्ण का जन्म हुआ है, इसीलिए यषोदा फूली नहीं समाती और वह नन्द को 'सुतमुख' देखने के लिए बुलाती हैं। तदनन्तर दान का क्रम आरम्भ होता है। नन्दजी पुरजनो ं तथा परिजनो ं सभी को यथा योग्य गाय, वस्त्र, आभूषण, नग–रत्न, पुष्पमाल, चन्दन, दबू रोचना आदि देकर सम्मान करते हैं। सब स्त्रियाँ 'सोहिली', 'चहर' गीत गाती हैं। बालक के जन्म के दसवें या बारहवें दिन उसका नामकरण संस्कार मनाया जाता है। कृष्ण और बलराम के नामकरण के अवसर पर सूर ने इस संस्कार को मनाने की बात कही है। जब षिषु छः महीने का हो जाता है तब उसको पहली बार अन्न चखाने के लिए 'अन्नप्राषन' संस्कार मनाया जाता है। कृष्ण के 'अन्नप्राषन' के दिन विविध प्रकार के व्यंजन बनाये जात हैं और अपनी जाति के लोगों की ज्योनार होती है। सूर ने इसका वर्णन किया है। एक वर्ष के हो जाने पर कृष्ण की 'वर्षगांठ' मनायी जाती है। यषोदा कृष्ण को स्नान कराती है तथा नवीन वस्त्र धारण कराती हैं। प्रत्येक जन्म दिन पर डोरे में एक गाँठ बाँध दी जाती है। प्रत्येक गाँठ आयु के एक वर्ष की प्रतीक मानी जाती थी।

बालक कृष्ण का तीसरे वर्ष में कनछेदन होता है। कृष्ण और बलराम का उपनयन संस्कार भी होता है लेकिन उचित समय पर नहीं। डॉ0 मुषीराम षर्मा का मत है–''संभवतः आयु में छोटे होने के कारण कृष्ण और बलराम को यज्ञोपवीत संस्कार गोकुल में नहीं हो सका। यह भी संभव है कि अमीर क्षत्रियों का महत्व मुगलकाल में क्षीण हो गया हो और उनके अन्तर्गत यज्ञोपवीत प्रथा का ही लोप हो गया हो। अतः कृष्ण जब मथुरा पहुँचे तब इस विस्मृत संस्कार को भी पूरा किया गया। सूर ने सूर–सारावली में इस ओर भी संकेत किया है। सूर ने कृष्ण के यज्ञोपवीत के बाद वेदारम्भ के लिए मथुरा में अवन्तीपुर भेजे जाने का उल्लेख किया। षोड्स संस्कारों में विवाह पारिवारिक ढाँचे की आधारशिला माना जाता है। परिवार और विवाह की विभिन्न स्थितियाँ जीवन विधि की विविधता की सूचक हैं और इन संगठनों के मूल में है उनकी सामाजिक चतेना सूर ने शिव–पार्वती, हलधर–रेवती, राम–सीता, वसुदेव–देवकी, राधा–कृष्ण, रूक्मिणी, जाम्बवन्ती, सत्यभामा, पंच पटरानी, बालिंदी, मित्रविंदा, सत्या, मुद्रा और लक्ष्मणा के साथ कृष्ण के विवाह प्रद्युम्न, अनिरूप और उषा, साम्ब–लक्ष्मणा एवं अर्जुन–सुभद्रा के विवाहों का उल्लेख किया है। डॉ0 मायारानी टंडन के अनुसार–''विवाह की रीतियाँ को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। प्रथम वर्ग में वरप्रेक्षण, वाग्दान, मंडप–करण, वधू–गृहा गमन, मंघुपर्क, समंजन, पाणिग्रहण, अग्नि–प्रदक्षिणा, गृह–प्रवेष आदि रीतियाँ आती हैं, जिनको 'शास्त्रविहित कृ त्य' कहा जा सकता है। द्वितीय वर्ग में वैवाहिक निमंत्रण, हल्दी–तेल चढ़ना, वर की सज्जा, कंकण–पूजन, देवी पूजन, जुआ–खेलन, कंकण मोचन, गाली देना आदि बातें आती हैं, जिनको कुलाचार के अन्तर्गत समझना चाहिए। इस प्रकार सूर ने जन्म काल से लेकर मरणोपरांत होने वाले विविध संस्कारों का सर्वांगपूर्ण वर्णन किया है।

पर्वों, उत्सवों और त्यौहारों का भारतीय जीवन में बड़ा महत्त्व रहा है। एक तरह से ये भारतीय समाज के मेरूदण्ड–स्वरूप हैं। सम्पूर्ण समाज एक साथ ही एक समय में इनको सम्पन्न करता है। अतः इनसे जीवन में सामाजिकता की वृद्धि भी होती है। महाकवि सूर ने मध्यकालीन जड़ता को तोड़ने के लिए पर्वोत्सवों का अमर गान किया। पर्वों में उन्होंने एकादषी व्रत ज्येष्ठाभिषेक, रामनवमी, नृसिंह तथा वामन जय ंतियों का उल्लेख किया है।

महाकवि सूर ने उत्सवों का भी वर्णन किया है। ये दो प्रकार के हैं–नित्य तथा अवतारी लीलाओं के उत्सव और ऋतुओं के उत्सव। नित्य तथा अवतारीलीलाओं के उत्सवो ं में रथ यात्रा, जन्माष्टमी, राधाष्टमी, गोपाष्टमी, पवित्रा, अक्षय तृतीया, संवत्सर, गनगौर, सावन–तीज, सांझी, नवरात्रि, देवी पूजन, नागलीला तथा रास प्रमुख है। सूरदास जी ने इन उत्सवों के अतिरिक्त दावानल और के शीदानव क` उत्सव का भी वर्णन किया है।

ऋत ुओं के उत्सव में फूल डोल, फूल मंडली, हिंडोरा तथा देव प्रबोधिनी आदि हैं। 'डोल' वसंत ऋत ु का उत्सव है, यह फागुन मास के शुक्लपक्ष में मनाया जाता है। सूर के कृष्ण मुरली बजाते हैं तथा गोपियां गीत गाती हैं। 'हिंडोरा' श्रावण कृष्ण पक्ष प्रतिपदा से शुरू हो जाता है। महाकवि सूर ने पर्वों एवं उत्सवों की तरह लोक त्यौहारों का भी वर्णन किया है। लोक त्यौहारों में रक्षाबंधन, दशमी, धनतेरस, रूपचतुर्दशी, दीपावली, अन्नकूट या गोवर्धन पूजा, भइया दूज, नागपंचमी तथा होली प्रमुख है। सूर ने इन त्यौहारौं का विस्तृत वर्णन किया है। इस सम्बन्ध में उनके लगभग 70 पद मिलते हैं।

सूर की राधा सुगंधित रंग–भरे कनक–कलश लेकर होली खेलने निकल आती है। सखियों को साथ लेकर कृ ष्ण को पकड़ लेती है। पहले कृष्ण की वेणी गूँथती है और भाल पर बिन्दी लगाकर वधू–वधू करती हुई गान करती है। ब्रज की होती में स्त्रियां पुरूषों की डंडों से खबर लेती है। माँ यशोदा कृष्ण को मार खाने के भय से छिपा देती हैं। कृ ष्ण के साथ बलराम की भी दुर्गति होती है। माँ यशोदा अपने दोनों प ुत्रों को बचाने के लिए बार–बार फगुआ मँगाकर बाँटती हैं। सूर के ग्वाल–बाल भी आपस में खूब होली खेलते हैं। सूर ने गोपियों के लिए पान–मिठाई के साथ 'कोटि कलश वारूनी' मँगाये जाने की बात भी कही है।

देवेन्द्र सत्यार्थी ने कहा है–''भारतवर्ष का कोई भी चित्र भारतीय प्रथाओं, रीति–रिवाजों और हमारे आन्तरिक जीवन की मनोवैज्ञानिक गहराई को इतने स्पष्ट तथा सशक्त ढंग से व्यक्त नहीं कर सकता जितना कि लोकगीत कर सकते हैं। 6 लोकगीतों में सामाजिक जीवन एवं कौटिम्बक आदर्शों की सुन्दर व्याख्या भी मिलती है। समाज को किस प्रकार का व्यवहार ग्राह्य है और किस प्रकार का अग्राह्य, इसकी भी विवेचना लोकगीतों में सहज हो जाती है। सूरदास ने संस्कारों के गीत, उत्सवों–पर्वों और त्यौहारों के गीत, ऋतुओं के गीत, मनोरंजन के गीत, विरह के गीत भी लिखे हैं। डॉ0 हरगुलाल के शब्दों में–''सूर ने कृष्ण की जलक्रीड़ा, पनघटलीला तथा दान लीला का वर्णन करते समय जिन पदों का सृजन किया है, वे रसिया की प्रतिकृति के कहे जा सकते हैं। इन पदों की प्रवृत्ति पूर्णतः रसिया की ओर झुकी हुई है। यद्यपि इन पदों को शास्त्रीय राग में बा ँधा गया है परन्तु इनको सहज लय, सहज समुच्छवसित साम ूहिक भावना तथा ग्रामीण शब्दावली इन्हें पूर्ण रूप से लोकगीत की कोटि म` परिसीमित कर देती है।

सूरदास ने विरहगीत 'विरहा' की शैली में लिखे हैं। 'पिड–पिड' की रट लगाने वाला पपीहा कभी हृदय को जलाता है तो कभी प्रिय का नाम लेने के कारण अच्छा लगता हैः 'बहुत दिन

जीवौपपिहा प्यारे।
बासर रैनि नाँव ले बोलत, भयौ विरहजुर कारे।।'[7]

लोकगीतों के पदों में सूर ने सामाजिक चेतना का सफल चित्रण किया है। सूर ने परम्परागत मान्यताओं और सामाजिक विश्वासों का भी वर्णन किया है। सामाजिक विश्वास समाज की आधारशिला होते हैं। इन्हीं सामाजिक विश्वासों के ऊपर ही समाज की नैतिकता, मंगलाशा, भविष्य के प्रतिगहन आशा एवं जीवन को सुखी बनाने वाली आशाएँ अबलम्बित हुआ करती हैं। सामाजिक विश्वास तीन प्रकार के होते हैं–पौराणिक विश्वास, सामान्य विश्वास एवं अन्ध विश्वास। पौराणिक– विश्वासों का भारतीय संस्कृति और उसकी चेतना में बड़ा महत्त्व रहा है। सूर की पौराणिक विश्वासों के प्रति गहरी आस्था रही है। पौराणिक विश्वासों में प्रमुख है–अवतारवाद उन्होंनें चौबीस अवतारों का वर्णन किया है लेकिन प्रमुखता दी है केवल दस अवतारों को ही। सूर के राम और कृष्ण दोनों परब्रह्य के अवतार हैं। ये धरती का भार उतारने के लिए प्रकट हुए हैं। सूर ने कृष्ण को अविगत, आदि अनन्त, अनुपम, अविनाशी आदि अनके नामों से अभिहित किया है। पौराणिक विश्वासों के अतिरिक्त समाज में प्रचलित कुछ सामान्य विश्वास भी होते हैं, जैसे–कुदृष्टि लगना तथा उसके निवारणार्थ विविध उपाय करना, शकुन–अपशकुन का विचार करना तथा स्वप्न एवं उसके अच्छे–बुरे परिणाम पर विचार करना आदि। माँ यशोदा नजर लगने के भय से आँचल के नीचे ढ़ककर दूध पिलाती हैं तथा बड़ा होने पर भी सामने ही बैठकर मक्खन खाने को कहती हैं। अन्धविश्वासों में भूत–प्रेत, हाऊ, चुड़ैल, डाइन, सयाना, टोना–टोटका, झाड ़–फूँक तथा जंत्र–मंत्र से सम्बन्धित विश्वास आत` हैं। ऐसा विश्वास है कि यदि मृतक का अत्येष्टि–संस्कार पूरा न किया जाए तो वह भूत बन जाता है। महाकवि सूर को लोक विश्वासों के इस महत्त्व की पूर्ण जानकारी थी, इसीलिए उन्होंनें मध्यकालीन परिव ेश के अन ुकूल इनका चित्रण किया है।

सूर ने बालक, बालिका, पुरूष और स्त्रियों के वस्त्रों का भी वर्णन किया है। वस्त्रों से व्यक्ति की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक स्थिति का बोध होता है। सूर ने कुलही, चौतनी, पाग, झगा, झगुलि, झगुलिया, पिछौरा, पीताम्बर, बागेचीर, कछनी, गोसमावल, उपरेना आदि बालकों के वस्त्रों का वर्णन किया है। बालिकाओ ं के वस्त्रों में सूर ने केवल फरिया, चूनरी और नाराब का उल्लेख किया है। सूर काव्य में वर्णित स्त्रियों की वेशभूषा विशेष आकर्षक है

उन दिनों लहँगा, साड़ी, कंचुकी और ओढ़नी आदि ही स्त्रियों को प्रमुख वस्त्र थे। उन दिनों पगा, झगा, धोती, दुपदी, पिछौरा आदि पुरूषों के वस्त्र हुआ करते थे। सूर के कृष्ण अनेक आभूषण पहनते हैं–सोने का जड़ाऊ मुकुट, मोर पंख का मुकुट, मकराकृति कुण्डल, कठुला, गजमनिया, हार, मोतियों की दुलरी माल, पदिक, गुंजा की वनमात मोतियों की माला, केयूर, पहुँची चूर, करधनी, किंकिनी, पैजनी आदि।

सूर के काल में प्रत्येक व्यक्ति अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार सोने, चाँदी, पीतल, राँगा, काँच, नकली मोती तथा पुष्प आदि के आभूषण पहनते थे। मणिजटित आभूषण तो सर्वसुलभ नहीं थे लेकिन कुण्डल, हार, चूरा, नथुनी, बाजुबन्द पहुँची, किंकिनी, मुद्रिका, पैंजनी आदि सामान्य आभूषण थे, जिन्हें स्त्री–पुरूष, बालक और बालिकाएँ लगभग सभी पहनते थे।

सूरने सोलह श्रृंगार की चर्चा भी की है। स्त्रियों की तरह पुरूष भी श्रृंगार प्रिय थे। महाकवि सूर ने मनुष्य के बाल्यावस्था से लकेर वृद्धावस्था तक किये जाने वाले मनोविनोद के साधनों का अत्यन्त रोचक वर्णन किया है। मनोविनोद के कार्यक्रम परिवार एवं समाज के बीच चलते रहते हैं, जिनसे मनोरंजन के साथ परस्पर सहयोग की भावना में वृद्धि होती है। श्री कृष्ण और श्रीदामा तारी मारकर दौड़ते हैं। जब श्रीदामा कृष्ण को पकड़ लेता है तो कृष्ण कहत` हैं कि मैं तो जानबूझकर खड़ा हो गया हूँ।[8]

सूर ने आँख मिचौनी, भौंरा चक डोरी, गेंद, चौगान–बटा, वृक्षारोपण या चढ़ा चढ़ी , मल्लयुद्ध, मृगया, धूतक्रीड़ा, चौपड़ आदि अनेक खेलों का वर्णन किया है। स्त्रियों के मनोरंजन का साधन हिंडोरा, झूलना, गीत गाना, जलबिहार करना आदि था। सूर काल में नारियों के मनोरंजन का सर्वश्रेष्ठ साधन 'रास' था।

सूर ने परिवारिक जीवन का भी चित्र प्रस्तुत किया है। उन्होंनें ऐसे परिवार की अभिव्यजं ना की है जो राग–द्वेष, हर्ष–शोक, ममता–मोह, लोभ–त्याग आदि की सामान्य घटनाओं से संयुक्त होकर हमारे समक्ष एक हृदयग्र ही परिवार की झाँकी प्रस्तुत करता है। सूर ने सम्मिलित परिवार को वरीयता दी है क्योंकि पारिवारिक अविच्छिन्नता ही भारतीय–समाज को सबल एवं सुरक्षित रख सकती है। परिवार के द्वारा सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्परा को सुरक्षित रखा जा सकता है। परिवार की बृहद् कल्पना ही सामाजिक संगठन का मूल आधार है। सूर द्वारा वर्णित परिवार में भाई–भाई में भी आपस में घनिष्ट प्रेम है। गोचारण–प्रसंग में कृष्ण के बड़े भ्राता बलराम उनके
लिए वनफल तोड़कर देते हैं तथा स्वयं गायें घेरते हैं।

महाकवि सूर सच्चे अर्थों में महाकवि हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से अपने युग तथा समाज का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत किया। वे भारतीय सामाजिक–चेतना के आधार स्तम्भ हैं। मध्यकालीन सांस्कृतिक संकटकाल में उन्होंनें धर्म एवं संस्कृति की ज्योति को बुझने से बचाया। उनका सूरसागर जीवन की एकान्तिक साधना न होकर लोक मानस की उच्छल अभिव्यक्ति है। उसमें मानवीय संवेदनाओं को उभारा है। सूर ने लोक जीवन का चित्रण करके आत्मीय सहजता को उभारा है, यह गुण उनके काव्य को गरिमा प्रदान करता है।

सूर को नगरीय जीवन से मोह नहीं रहा है। उनकी पक्ष धरता ग्राम्य जीवन या ग्रम्य संस्कृति के प्रति रही। उनके काव्य में जीवन की जो पृष्ठभूमि है, वह सामान्य जन–जीवन से सम्बन्धित हैं। यहाँ तक कि उनके आराध्य देव भी ऐसे गोप जीवन के बीच विकास करते हैं जो ाजसी ठाठ–बाट और ऐश्वर्य की दृष्टि से बहुत दरिद्र हैं। गोकुल में उनका सारा जीवन एक सामान्य गोप बालक का जीवन है। अतीत–वत र्मान में पुनरूज्जीवित होता है क्योंकि हम उसे नयी व्याख्या देते हैं। यही कारण है कि सूर का काव्य आज भी जीवित है। उसमें आज भी वही अपील है जो मध्यकाल में थी।

महाकवि सूर सांस्कृतिक समन्वय के अग्रदूत तथा एक सफल राष्ट्रचेता भी थे। वे युगीन हिन्दू राष्ट्र के रक्षक थे। यहाँ राष्ट्रीय चेतना से मेरा उद्देश्य उस चेतना से है जो समष्टि के अम्युदय को प्रेरण देती है। सूर ने अपने काव्य में सामाजिक चेतना को उद्बुद्ध किया तथा निराश जनता में आशा का संचार किया। विनय के पदों में राष्ट्रीय संवेदना की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। उनके इन पदों में समग्र हिन्दू समाज का हृदय बोलता है।

संदर्भ

1. हिन्दी साहित्य कोशः सं0 धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 247 2 सूरसागर, प्रथम स्कन्ध, पद।।
3. सूरसागर, दशमस्कन्ध, पद 673
4. वही, पद 863
5. सूरसागर, दशम स्कन्ध, पद 3636
6. मानव और संस्कृति : श्यामाचरण दुबे से उद्धृत 7. सूरसागर, दशम स्कन्ध, पद 445
8. सूरसागर, दशम स्कन्ध, पद 712